पुस्तकालय की ज़रूरत और पुस्तकालय प्रशिक्षण

नीतू सिंह

शिक्षा में काम कर रहे लोगों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि पढ़ने-पढ़ाने को लेकर अपने नज़रिए और रणनीति में स्पष्टता रखें, खास तौर से तब, जब हम गतिविधि, खोज और अन्वेषण के माध्यम से ज्ञान के सृजन का इरादा रखते हों। इन इरादों के लिए स्कूलों में जीवन्त पुस्तकालय, उपयुक्त स्थान और माहौल मुहैय्या करवा सकते हैं। अपने अनुभव के आधार पर मैं आपको यह बताना चाहती हूँ कि पुस्तकालय एक महत्वपूर्ण जगह है और मज़े के लिए पढ़ना एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। यही वह जगह है जहाँ पर हम ज्ञान का सृजन कर सकते हैं। पराग कार्यक्रम के तहत चलने वाले लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स का अनुभव बताता है कि उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पुस्तकालय-शिक्षकों, पुस्तकालय-प्रशिक्षकों और पुस्तकालय-कर्मियों को ज्ञान-सृजन के लिए किस तरह के कौशल और जानकारियों की ज़रूरत है और उनकी भूमिका क्या है। मेरी कोशिश रहेगी कि अपने इस अनुभव को वर्तमान शिक्षाई परिदृश्य के सन्दर्भ में साझा कर सकूँ।

निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा (आरटीई) अधिनियम, 2009 का अधिकार, 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। जैसा कि इस अधिनियम का परिशिष्ट बताता है कि अब यह कानूनी तौर पर अनिवार्य है कि सभी स्कूलों के पास एक सुसज्जित पुस्तकालय हो, हालाँकि इस अधिनियम के कई अन्य प्रावधानों की तरह यह भी अब तक पूरे तौर पर लागू नहीं हो पाया है। इसकी मुख्य वजह पैसों की कमी बताई जाती है, पर हमें इसके पीछे की वैचारिक समस्याओं को भी समझना होगा कि हम बच्चों के मानसिक जगत के विस्तार और विकास के लिए किस प्रकार की जगहों का निर्माण कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि स्कूल में पुस्तकालय की कमी सिर्फ भौतिक समस्या ही नहीं है बल्कि कई मायनों में हम रणनीतिक तौर पर भी पुस्तकालय और इसके इस्तेमाल के लिए हुनरमन्द शिक्षकों या पेशेवर लाइब्रेरी प्रशिक्षकों

की कल्पना करने में नाकाम रहे। मज़े के लिए पढ़ना हमारी शिक्षण शास्त्रीय रणनीति का हिस्सा नहीं है, कम-से-कम स्कूली पुस्तकालयों और वहाँ पढ़ने के लिए मुकर्रर वक्त को देखकर तो ऐसा ही लगता है। हमें यह समझना होगा कि मज़े के लिए पढ़ने और कहानियों के ज़रिए होने वाले ये विकास, अदृश्य होते हैं और इनका शिक्षण शास्त्रीय महत्व काफी ज़्यादा है, जैसा कि नुस्स्बौम[1] बताती हैं कि बचपन में सीखी (सुनी-पढ़ी) गई कहानियाँ उस दुनिया का एक शक्तिशाली घटक हैं जहाँ हम वयस्क के रूप में रहते हैं।

कुल मिलाकर उपरोक्त समस्या के तीन मुख्य पहलू हैं:

- बच्चे पढ़ें और मज़े के लिए पढ़ें, इसके महत्व को समझना।
- इस काम के लिए पुस्तकालयों को जीवन्त बनाना।
- और इस प्रक्रिया की निरन्तरता के लिए पेशेवर लोगों को तैयार करना।

इस क्रम में यह ज़रूरी है कि हम पुस्तकालय-शिक्षकों और प्रशिक्षकों को तैयार करने के लिए आज़माई गई कुछ प्रक्रियाओं को समझें। यह समझना भी ज़रूरी है कि भारत में स्कूल पुस्तकालय को लेकर क्या नीतियाँ हैं और ये किस भूमिका को पूरा कर रहे हैं और इनसे अपेक्षा क्या है।

ज्ञान सृजन के लिए स्कूल पुस्तकालय

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005[2] स्कूल पुस्तकालय को एक बौद्धिक स्थान के रूप में परिकल्पित करती है, जहाँ शिक्षकों, बच्चों और समुदाय को ज्ञान और कल्पना को गहराई से जानने का अवसर मिल सकता है। किसी भी स्कूली पुस्तकालय का मुख्य उद्देश्य बच्चों के लिए पढ़ने की सामग्री उपलब्ध कराना और पाठकों को पोषित करना है। एक कमज़ोर पुस्तकालय इन सामाजिक शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता।

---

[1] *नुस्स्बौम, एम. (2010): नॉट फॉर पब्लिक : वाय डेमोक्रेसी नीड्स दि ह्यूमेनिटीज़ न्यू जर्सी: प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस*

[2] *एन.सी.ई.आर.टी. (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्: दिल्ली*

यह दस्तावेज़ बताता है कि पाठकों के लिए समृद्ध संसाधनों से भरे जीवन्त और गतिशील पुस्तकालयों की आवश्यकता है। इन उद्देश्यों को देखते हुए स्कूल पुस्तकालय के विकास और सुधार को प्राथमिकता देनी चाहिए। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के आगमन के बाद इस नज़रिए को साकार करने के लिए हम नए तरीकों की उम्मीद कर सकते थे। स्कूल पुस्तकालय की भावी भूमिका की कल्पना करते हुए इसे अब सूचना हस्तान्तरण मात्र से कुछ ज़्यादा मानना होगा ताकि यह सामग्रियों और ज्ञान के सृजन का स्थान ले सके। पुस्तकालय वह जीवन्त जगह है जहाँ ज्ञान के निर्माण के कई अवसर हो सकते हैं। बच्चों की बदलती ज़रूरत, विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे की ज़रूरत और सूचना संचार के क्षेत्र में आए बदलाव ने न सिर्फ पुस्तकालय की समझ को बल्कि पुस्तकालय कर्मियों की भूमिका को भी बदला है।

बच्चों के साथ पुस्तकालय एक अलग तरीके से संवाद करता है। गिजुभाई[3] ने इसका ज़िक्र करते हुए बताया है कि 'एक अच्छा पुस्तकालय कई शिक्षकों की गरज पूरी करता है। पुस्तकालय विद्यार्थियों को न तो धमकाता है, न उनसे अनुशासन पलवाता है, न कक्षा में चढ़ाता-उतारता है, न मिथ्या स्पर्धा में प्रवेश कराता है, और न परीक्षा का भय बनाता है। वह तो अपने पास आने वालों को प्रेम-पूर्वक, विनय-पूर्वक और रुचिपूर्वक पढ़ाता रहता है'। लेकिन पुस्तकालय तक बच्चे पहुँचें और वहाँ रूककर पढ़ें, इसके लिए पेशेवर और हुनरमन्द लोग (शिक्षक) चाहिए जो बच्चों को पुस्तकालयों में रोक सकें।

आगे हम इन आयामों में से एक आयाम की विस्तार से चर्चा करेंगे कि बेहतर और योग्य पुस्तकालय-शिक्षकों का विकास कैसे हो और पुस्तकालय-शिक्षकों के समूह के साथ इस काम को करने के क्या अनुभव रहे।

पेशेवर पुस्तकालय-शिक्षक की ज़रूरत

पुस्तकालय-शिक्षक की ज़रूरत को समझने के लिए मैं यहाँ पर सरकारी स्कूल में अपने काम के एक अनुभव को साझा करना चाहूँगी। उस सरकारी स्कूल में भी लगभग वैसी ही स्थिति थी जैसी कि अन्य सरकारी स्कूलों में हुआ करती है। कहने को पुस्तकालय का कमरा ज़रूर था, पर वह एक ऐसी जगह में तब्दील हो गया था, जहाँ कई तरह की सरकारी योजनाओं की खानापूर्ती हुआ करती थी। यहाँ कुछ अरसा पहले एक संस्था द्वारा लाइब्रेरी का एक कार्यक्रम चलाया गया था, लेकिन जैसे ही कार्यक्रम बन्द हुआ, लाइब्रेरी कक्ष का इस्तेमाल बदल गया। किताबें थीं पर उनका इस्तेमाल नहीं

[3] *गिजुभाई (2006): प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियाँ: गिजुभाई ग्रन्थमाला-9, चुरू: चुरू मोंटेसरी शिक्षण समिति*

होता था। यह एक ऐसी जगह थी जहाँ बच्चे नहीं आते थे। मैंने कोशिश की कि बच्चे किताबों से परिचित हो सकें और उनके अन्दर पढ़ने की लत पनप सके। लेकिन यह काम इतना आसान नहीं था, प्राचार्य के अनुसार यहाँ के बच्चे उद्दण्ड हैं और उनकी पढ़ने में कोई रुचि नहीं है।

मेरी यह कोशिश थी कि बच्चे पुस्तकालय तक पहुँचें और किताबों से परिचित हो सकें लेकिन समस्या यह थी कि ज़्यादातर बच्चे पढ़ नहीं सकते थे। बस एक ही विकल्प था कि मैं उन्हें किताबें दिखाकर उनकी कहानियाँ सुनाऊँ। यह तरकीब कारगर रही, बच्चे पुस्तकालय आने लगे और पुस्तकों को पलटकर देखने लगे, साथ ही उनके बीच मेरी स्वीकार्यता बढ़ गई। मुझे शिक्षा शास्त्र के अन्तर्निहित सत्य का एहसास हुआ कि कहानियाँ बच्चों को ज़बर्दस्त तरीके से लुभाती हैं। शुरू के कुछ दिनों के अनुभव से तीन बातें स्पष्ट तौर पर समझ में आईं:

- सरकारी स्कूल के शिक्षक पुस्तकालयों का न्यूनतम इस्तेमाल भी नहीं करते हैं बल्कि अक्सर पुस्तकालय के कमरे का इस्तेमाल नई सरकारी योजनाओं के लिए होता है,
- शिक्षक पुस्तकालय की वजह से उपलब्ध हो सकने वाले मौके का इस्तेमाल नहीं करते, और
- शिक्षकों को पुस्तकालय के शिक्षण शास्त्रीय इस्तेमाल के हुनर की ज़रूरत है।

यह अनुभव बताता है कि हमें शिक्षकों के हुनर में पुस्तकालय के कामकाज को जोड़ना होगा। एक पेशेवर पुस्तकालय-शिक्षक या पुस्तकालय-कर्मी तैयार करने के लिए हमें दो सन्दर्भों में बात करना होगी, पहली यह कि सभी स्कूलों में प्रशिक्षित पुस्तकालय-कर्मी

नहीं होते हैं (आर.टी.ई. अधिनियम भी इसका प्रावधान नहीं करता)। दूसरी, वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रम भावी शिक्षकों को ये नहीं बताते कि पुस्तकालयों का बेहतर प्रयोग कैसे हो। यह कमी कैसी है और इसको कैसे पाटा जा सकता है – इसे समझाने के लिए मैं एक अन्य ज़मीनी अनुभव को रखना चाहूँगी।

जिस समय राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यचर्या की नई रूपरेखा रची जा रही थी और उसके आधार पर नई पुस्तकें बनाई जा रही थीं, लगभग उसी समय टाटा ट्रस्ट ने बच्चों के पढ़ने की प्रक्रिया को सहज बनाने के लिए 'पराग' नामक एक कार्यक्रम को एक प्रयोग के रूप में शुरू किया। इस कार्यक्रम की शुरुआत बच्चों के लिए बेहतर साहित्य उपलब्ध कराने से हुई, परन्तु फिर इसमें एक और आयाम जोड़ा गया जहाँ पुस्तकालय के जीवन्त इस्तेमाल के ज़रिए न सिर्फ पढ़ने पर बल्कि इस जगह को ज्ञान निर्माण के स्थान के रूप में विकसित करने पर ज़ोर दिया गया।

इस कार्यक्रम का अनुभव बताता है कि पुस्तकालय को ज्ञान सृजन की जगह के रूप में कल्पना करने के लिए सबसे पहली ज़रूरत है कि बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण साहित्य विकसित और प्रकाशित किया जाए और पुस्तकालयों की स्थापना के माध्यम से इन पुस्तकों तक बच्चों की पहुँच सुनिश्चित की जाए, जिसमें यह कोशिश भी शामिल होनी चाहिए कि बच्चों के लिए प्रतिभाशाली लेखकों, चित्रकारों, पुस्तकालय-कर्मियों का एक हुनरमन्द समूह तैयार किया जाए। इसके लिए ज़रूरी है कि पुस्तकालय के लिए शिक्षक और अन्य लोगों को तैयार करने के लिए एक सघन पाठ्यक्रम बनाया और चलाया जाए ताकि ऐसे लोगों का समूह तैयार हो, जो पुस्तकालयों का सक्रिय और सृजनशील इस्तेमाल कर सकें।

इस कमी को एक छोटे स्तर पर पूरा करने के लिए 2015 में पराग कार्यक्रम के तहत लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स (एल.ई.सी.) की शुरुआत की गई। इस विश्वास के साथ कि सक्रिय पुस्तकालय और प्रशिक्षित पुस्तकालय-शिक्षक, बच्चों के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। इसमें बच्चों के पुस्तकालयों की स्थापना पर तो ज़ोर है ही (जिसमें स्कूल-पुस्तकालय, सार्वजनिक-पुस्तकालय, सामुदायिक-पुस्तकालय सभी शामिल हैं), साथ ही यह पढ़ने-पढ़ाने का काम करने वाले लोगों की नेटवर्किंग एवं भारत में पुस्तकालय आन्दोलन को गति देने पर भी ज़ोर देता है। इसका लक्ष्य पुस्तकालयों के जीवन्त इस्तेमाल और बाल साहित्य के ज़रिए सार्वभौमिक गुणवत्ता शिक्षा की ओर बढ़ने के साथ-साथ भारतीय समाज में पढ़ने की संस्कृति में मौजूद रिक्तता को भरने का भी है। सात महीने तक चलने वाले इस कोर्स को मिश्रित तरीके से

कराया जाता है। सम्पर्क अवधि का आयोजन पूरे कोर्स के दौरान तीन से पाँच दिनों के लिए, तीन बार किया जाता है (कुल मिलाकर 13 दिन)। इनके बीच के अन्तराल में प्रतिभागी पुस्तकालयों में बच्चों के साथ काम करते हैं और कोर्स की फैकल्टी इन्टरनेट आधारित एक विशेष सॉफ्टवेयर (मूडल) और कॉन्फरेंस कॉल के ज़रिए उन्हें सलाह देती है।

प्रतिभागियों को कोर्स के दौरान कई तरह की गतिविधियाँ करवाई जाती हैं ताकि वे बच्चों के साथ पुस्तकालयों में ऐसी ही अन्य गतिविधियों का आयोजन कर सकें जैसे कहानी सुनना/सुनाना, पुस्तकों का प्रदर्शन करना, पुस्तक पर वार्तालाप करना, स-स्वर पढ़ना और एक जीवन्त पुस्तकालय बनाने की प्रक्रिया शुरू करना।

पुस्तकालय और पढ़ने की गतिविधियाँ

शिक्षा में काम करने वालों को कोरे विचारों वाली शब्दबाज़ी (वर्बलिज़्म) या बगैर विचार के अतिशय काम के एक्टिविज़्म से बचना चाहिए (फ्रेरे 1970)[4]। यह कोर्स इस द्वन्द्व को हल करने की कोशिश करता है। इस कोर्स के दौरान किताबों के साथ सार्थक जुड़ाव के लिए प्रतिभागी किताबों के बेहतर इस्तेमाल के तरीके और किताबों में रुचि पैदा करने वाली गतिविधियाँ करतें हैं, साथ ही 'पुस्तकालय' और 'पढ़ने' की समझ बनाने वाले लेखों को भी पढ़ते हैं। इस प्रक्रिया में 'सिद्धान्त' और 'अभ्यास' दोनों का सन्तुलन बनाया गया है। इस कोर्स में फैकल्टी और प्रतिभागियों के बीच, पुस्तकालय और वहाँ की जाने वाली गतिविधियों को लेकर गहरी बातचीत की जाती है। यह बातचीत केवल विमर्श और सिद्धान्त के स्तर पर नहीं होती बल्कि पुस्तकालय अभ्यास और उस दौरान दिए जाने वाले गहन निर्देश इसका एक अहम हिस्सा होते हैं। यह बातचीत सिर्फ फैकल्टी सदस्यों और प्रतिभागियों के बीच ही नहीं होती, बल्कि प्रतिभागी आपस में भी इस चर्चा को लगातार जारी रखते हैं। समूह का एक साझा उद्देश्य होता है, और इसके लिए रची गई गतिविधियों को वे अपने पुस्तकालयों में आज़माते हैं और उस समझ को एक बड़े समूह

[4] *फ्रेरे, पाउलो (1970): पेडागॉजी ऑफ ओपरेस्ड न्यूयॉर्कः कन्टीन्यूम*

के साथ साझा करते हैं। समूह में काम करते हुए, पुस्तकालय के काम को समझने के लिए ये गतिविधियाँ काफी मददगार होती हैं।

साथ ही किताबों और पुस्तकालयों के विमर्श को भी समझाने की कोशिश होती है। पहली बात यह कि बच्चे एक सक्रिय और गम्भीर पाठक होते हैं, इसे जानते-समझते हुए प्रशिक्षु बच्चों से किताबों पर बात करना सीखते हैं। दूसरी बात कि बच्चों के पुस्तकालय में काम करना एक तकनीकी मामला है और बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित करने के लिए कई तरह के हुनर की ज़रूरत होती है। बच्चों की पुस्तकों को समझना, एक ज्ञान और कौशल की माँग करता है, जिसमें कई छोटी-बड़ी चीज़ें शामिल हैं; जैसे यह समझना कि किताब की कहानी क्या है, शब्दों के आकार कैसे हैं, या उस किताब में चित्रकारी कैसी है।

इस प्रक्रिया के तहत प्रशिक्षुओं को पुस्तकालय की जगह को खुशनुमा और जीवन्त बनाना सीखना होता है। इसके लिए पुस्तकालय में काम करने की समझ और पुस्तकालय को जीवन्त बनाने के लिए कुछ बेहतर तरीके और अनुभव पर बात की जाती है जिसे बाद में ये प्रशिक्षु आज़माते हैं जैसे -

- किताबगोई करना (बुक टॉक) – किताबों के बारे में बातचीत करना।
- नई किताबों की खोज करना और इन्हें संरक्षित रखना।
- पढ़ने के बारे में समझ बनाना (अलग-अलग तरीके) और यह सिखाना कि पढ़ने को और मज़ेदार कैसे बनाएँ।
- किताबों के बारे में सीमित और रूढ़ समझ को चुनौती देना, ताकि केवल बड़े लोग ही यह तय न करें कि बच्चों के लिए क्या महत्वपूर्ण है।
- पढ़ने और न पढ़ने के बीच के फासले को समझाना और उसे पाटने की कोशिश करना।
- बच्चों को तरह-तरह की लेखन विधाओं से परिचित करना जैसे – कथा, कथेतर, यात्रा वृतान्त, जीवनी, संस्मरण, कविता इत्यादि।

ये सभी काम मिलकर इस कोर्स के प्रतिभागियों को यह बताते हैं कि पुस्तकालय को जीवन्त बनाने के दो उपयोग हैं। पहला, यह पढ़ने का एक मज़ेदार रास्ता खोलता है और दूसरा, इस जगह के इस्तेमाल के नए तरीकों को सुझाता एवं सिखाता है। ये प्रक्रिया बच्चों को पढ़ने की आदत डालती है, खासकर कहानियाँ, बच्चों को नियमित रूप से पढ़ने को प्रेरित करती हैं जैसा कि गैमन[5] बताते हैं, बच्चा (पाठक) यह पता करने के लिए कि कहानी में आगे क्या होना है, पृष्ठ दर पृष्ठ बढ़ता चला जाता है। इस प्रक्रिया को

[5] *गैमन, नील (2013): व्हाई अवर फ्यूचर डिपेंड्स ऑन लाइब्रेरीज़, रीडिंग एंड डे ड्रीमिंग, https://www.theguardian.com/books/2013/oct/15/neil-gaiman-future-libraries-reading-day-dreaming पर 1 मार्च 2018 को।*

जारी रखने की ज़रूरत है, भले ही यह कठिन हो, क्योंकि किसी घटना के शुरू होने के बाद यह जानना मज़ेदार होता है कि वह खत्म कैसे हो रही है। यह प्रक्रिया बच्चों को नए शब्दों, नए विचारों और नई कल्पनाओं की ओर प्रेरित करती है।

पढ़ने-पढ़ाने का अड्डा

पुस्तकालय के सार्थक इस्तेमाल से ही हम बच्चों को यह अनुभव करा सकते हैं कि पढ़ना एक मज़ेदार काम है। एक बार जब बच्चे ये सीख जाते हैं, तो उसके बाद वे खुद-ब-खुद पढ़ने के लिए आगे आते हैं। जैसा कि पहले ज़िक्र किया गया, एन.सी.एफ. 2005 में पुस्तकालयों को सीखने की एक महत्वपूर्ण जगह के रूप में सन्दर्भित किया गया है और यह प्रस्तावित किया गया कि पुस्तकालय विद्यालय का एक अनिवार्य घटक होगा जो न केवल सीखने के लिए संसाधन प्रदान करेगा बल्कि सक्रिय रूप से पढ़ने के विमर्श को मज़बूत करेगा जहाँ पढ़ने का आनन्द उठाया जा सकता है। इसके ज़रिए ज्ञान का निर्माण होगा और बच्चों की कल्पना को विस्तार देने के अवसर मिलेंगे। इसमें समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकों के साथ-साथ जहाँ भी सम्भव हो, कम्प्यूटर सहित नई सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग होगा। पुस्तकालय प्रबंधन और इसके उपयोग को शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के भीतर एकीकृत किया जाएगा।

आर.टी.ई. अधिनियम 2009 में भी पुस्तकालय को एक अहम दर्जा मिला। सर्व शिक्षा अभियान के ज़रिए संसाधनों को उपलब्ध करने के लिए वित्तीय प्रस्ताव भी पारित किए गए।[6] ऐसी कल्पना थी कि पुस्तकालयों का निर्माण एक विकेन्द्रीकृत तंत्र द्वारा किया जाएगा जिसमें शिक्षक और स्कूल मैनेजमेंट कमिटी (एस.एम.सी.) किताबों का चयन करेंगे और उनकी खरीददारी भी करेंगे। पर यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि सरकार की इस या अन्य किसी योजना में स्कूल के लिए बाल साहित्य को विकसित करने का कोई प्रस्ताव नहीं था। इन-सर्विस शिक्षक प्रशिक्षण के लिए संसाधन तो थे पर पुस्तकालयों के लिए शिक्षकों की तैयारी कैसी हो, इसकी न तो कोई रणनीति थी, न ही इस काम के लिए कोई विशेष प्रावधान था। यहाँ यह दर्ज करना भी ज़रूरी है कि आर.टी.ई. अधिनियम 2009, पुस्तकालयों के लिए प्रशिक्षित पुस्तकालय-कर्मियों का प्रावधान नहीं करता है, एक तरह से ज़िम्मेदारी शिक्षक की ही है कि पुस्तकालय को संचालित कैसे किया जाए। बी.एड. या सेवा-पूर्व (प्री-सर्विस) शिक्षक-प्रशिक्षण के अन्य कार्यक्रम शिक्षकों को इसके लिए तैयार नहीं करते। पर रणनीतिक तौर पर यह ज़रूरी है कि सरकार के कार्यक्रमों और दिशानिर्देशों पर एक यथार्थवादी समझ बनाई जाए।

सरकार की आधिकारिक रपटें बताती हैं कि बच्चों के लिए उपयुक्त वातावरण में पर्याप्त पढ़ने के अवसरों को उपलब्ध कराने के माध्यम से सार्वभौमिक गुणवत्ता की शिक्षा को पाया जा सकता है। इसके लिए राज्य सरकारों से यह उम्मीद है कि उचित समय सीमा के भीतर सभी स्कूलों में पुस्तकालय की स्थापना करें। पर इससे भी ज़्यादा ज़रूरत है कि हम ऐसे लोगों को तैयार करें जो पुस्तकालयों का सटीक इस्तेमाल करना जानते हों, जो ये समझते हों कि बच्चों के लिए पढ़ना ज़रूरी है और अगर बच्चों को पर्याप्त अवसर मिलें तो वे अपने लिए पढ़ने की चीज़ों को खुद तलाश सकते हैं। पराग का यह कोर्स बताता है कि हमें कई तरह की पूर्व-धारणाओं से निपटना होगा, जैसा कि गैमन (2017) बताते हैं कि यह मानने की काफी समस्याएँ हैं कि बच्चों के लिए कथा-कहानियाँ (फिक्शन) अच्छी चीज़ नहीं हैं। साथ ही, जिन किस्से-कहानियों को हम बच्चों के लिए पसन्द नहीं करते, वे अन्य उन किताबों को पढ़ने का रास्ता खोल सकती हैं जिन्हें हम पसन्द करते हैं। पर अगर शिक्षक या पुस्तकालय-शिक्षक पर्याप्त रूप से जागरूक न हो तो वह पढ़ने के मज़े को खतम कर सकता है, जिससे बच्चों के लिए पढ़ना एक अप्रभावी, बदतर और अप्रिय गतिविधि बन जाती है। ऐसे में यह ज़रूरी है कि हम उस समूह को तैयार करें जो बच्चों के

[6] *एम.एच.आर.डी. (2011): एस एस ए फ्रेम वर्क ऑफ इम्प्लीमेंटेशन, दिल्ली : एम.एच.आर.डी.*

पुस्तकालय एवं पढ़ने के मर्म को समझाता हो। हम सबका अनुभव इंगित करता है कि पुस्तकालयों में काम करने के कौशल का अभाव, उस जगह को बन्द अलमारियों में तब्दील कर देता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अनुभव के आधार पर दो जगह रिक्तता दिखती हैः 1) बच्चों के लिए नियमित रूप से बाल साहित्य के विकास की ज़रूरत है और 2) ऐसे प्रशिक्षित लोगों की कमी है जो बच्चों के साथ सघन रूप से पुस्तकालय में काम कर सकें।

अगर पहले मसले पर गौर करें तो हम पाते हैं कि बच्चों के लिए साहित्य का प्रकाशन कई निजी प्रकाशक और संस्थाएँ करती रही हैं और सरकार की ओर से भी नेशनल बुक ट्रस्ट यह काम करता है, बावजूद इसके स्कूल के पुस्तकालयों में अच्छी किताबों का अभाव दिखता है। एक बड़ा कारण यह है कि स्कूलों के पास नियमित रूप से किताबों को खरीदने के लिए पर्याप्त राशि नहीं होती है। इसके साथ एक मसला यह भी है कि ज़्यादातर

किताबें मानक भाषाओं में ही छपती हैं और इसके कारण स्थानीय बोलियाँ उपेक्षित रह जाती हैं – यह स्थिति बच्चों के सामने एक चुनौती एवं रुकावट (अगर पुस्तकालय में प्रवेश मिले तो भी) प्रस्तुत करती है - सम्भवतः इस स्थिति को स्थानीय लेखकों के विकास से पाटा जा सकता है।

दूसरी समस्या है – उपयुक्त और प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव, चूँकि वर्तमान कानून स्कूल के पुस्तकालयों के लिए अलग से व्यक्तियों या प्रशिक्षित पुस्तकालय-कर्मियों का प्रावधान नहीं करता इसलिए ज़्यादातर पुस्तकालय इस्तेमाल में लाए नहीं जाते, पुस्तकालयों का सक्रिय इस्तेमाल तो इसके बाद की बात है। इस समस्या का एक पहलू यह भी है कि सेवा-पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में भी स्कूल पुस्तकालय को लेकर कोई गहन चर्चा नहीं की जाती है। यह स्थिति एक सार्वजनिक गलतफहमी को पैदा करती है कि बच्चों के पुस्तकालयों में काम करने के लिए किसी तकनीकी समझ की ज़रूरत नहीं है जबकि हमारा अनुभव बताता है कि प्रशिक्षित साथी बच्चों को एक बेहतर पाठक के रूप में पोषित कर पाते हैं।

पुस्तकालय में काम करने वाले शिक्षकों और अन्य कर्मियों के पास ऐसे मौके बहुत कम होते हैं जहाँ वे अपने आप पुस्तकालय चलाने की तकनीक सीख सकें। जैसा कि इससे पहले भी ज़िक्र किया गया है कि यह ऐसी चूक है जिसको न तो सेवा-पूर्व (प्री-सर्विस) शिक्षक-शिक्षा पूरी करती है, न ही सेवाकालीन (इन-सर्विस)। पुस्तकालयों के लिए जिस तरह के हुनरमन्द लोगों की ज़रूरत है वैसे पेशेवर तैयार करने की औपचारिक प्रक्रियाओं का एक स्पष्ट अभाव दिखता है। पुस्तकालय के लिए उपयुक्त हुनरमन्द इन्सानों का समूह तैयार करने के लिए व्यवस्थित तरीके से शिक्षकों को पुस्तकालय प्रशिक्षण की ज़रूरत है।

नीतू सिंहः टाटा ट्रस्ट के पराग कार्यक्रम में लाइब्रेरी-एजूकेटर्स कोर्स की संयोजक (सहायक प्रबंधक) हैं। शिक्षा-शास्त्र और भाषा के अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ वे बाल-साहित्य, शिक्षक-शिक्षा और बच्चों के पुस्तकालय के क्षेत्र में कई वर्षों से कार्यरत हैं। इससे पहले वे डायट (भोपाल) में शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में काम करती थीं। वे घरेलू सामान से बच्चों के लिए खिलौने भी बनाती हैं।

सभी चित्रः शुभम लखेराः चंदेरी शहर, मध्य प्रदेश के रहने वाले हैं। ग्वालियर से फाइन आर्ट्स (चित्रकला) में स्नातक किया है। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करते हैं।